ईश स्तोत्रम्
डा० सुभाष वेदालंकार

गोवर्धन-ग्रन्थ-माला—२०

ईश-स्तोत्रम्

(वेद संहिताओं में, वर्णित-ईश्वर की
विभिन्न नामों से स्तुति)

प्रणेता

डा० सुभाष वेदालङ्कार

एम. ए. (संस्कृत, वेद), पीएच. डी., साहित्याचार्य

मूल्य—२)

पुस्तकालय-संस्करण—३)२५

वितरक

अलंकार-प्रकाशन, जयपुर

७४ तनेजा ब्लाक आदर्श नगर, जयपुर-३०२००४

राजस्थान में—ज्ञानगङ्गा प्रकाशन, जयपुर

ईश-स्तोत्रम्

अनुक्रमणिका

प्रकाशक—विश्रुत आर्य
मनीषा प्रकाशन, जयपुर
७४ आदर्शनगर जयपुर ३०२००४
प्रथम संस्करण—१९८२

समर्पण

महान इतिहासकार, अन्तर्राष्ट्रीय-ख्याति के विद्वान,
प्रसिद्ध भाषाविद्, विख्यात शिक्षाविद्,
सुरभारती के अनन्य सेवक एवं
कवि गुरुवर श्रद्धेय

डा. गोविन्द चन्द्र पाण्डे

के

चरणारविन्दों में सादर
समर्पित

२६ अक्टूबर, १९८२
अखिल भारतीय प्राच्य विद्या सम्मेलन
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

विनयावत
सुभाष वेदालङ्कार

आचार्य धर्मपाल आर्य
आर्य वीरदल मु. रवाई

प्राक्कथन

'ईश-स्तोत्रम्' को मनीषी कवियों एवं विद्वानों के कर कमलों में समर्पित करते हुए मुझे अपार हर्ष हो रहा है।

मार्च १९८२ में पूज्या माताजी श्रीमती सुन्दरी देवी गम्भीर रूप से बिमार थीं, उनके जीवन की आशा भी हम सब परिजनों ने छोड़ दी थी। २६ मार्च की रात को किसी भी क्षण अप्रिय घटना घट सकती थी। समस्त व्यक्ति अपने-अपने ढंग से ईश्वर-भक्ति में लगे थे, और तभी अचानक अर्ध-रात्रि में मैंने ईश्वर की स्तुति में शिखरिणी छन्द लिखने शुरू किये। प्रथम रात में पांच ही छन्द लिख पाया था।

२७ ता. को प्रातः हमें पूज्य माताजी के जीवन की नई किरण दिखाई दी। सब की पूजा, भक्ति स्तुति ने रङ्ग दिखाया था। दैवी चमत्कार ही समझें कि ईश्वर की अपार अनुकम्पा से पूज्या माता जी स्वस्थ्य होने लगीं। मैंने अभी ५१ ही शिखरिणी छन्द लिखे थे कि १½ माह बाद माताजी स्वस्थ हो गईं।

विभिन्न छन्दों में और पद्य लिखकर, भूमिका, गुरु वन्दना आदि को बाद में जोड़कर मैं उन्हीं पद्यों को 'ईश-स्तोत्रम्' नाम से अनुवाद के साथ प्रकाशित करवा रहा हूँ। पुस्तक में ईश्वर की भिन्न-भिन्न नामों से स्तुति की गई है। प्रथम भाग में स्तुति है, द्वितीय में ईश्वर-महिमा का वर्णन है और तृतीय भाग में प्रार्थना है।

श्रद्धेय नवलकिशोर जी कांकर व उनके पुत्र डा॰ नारायण लाल कांकर जी ने, पद्यों का संशोधन करके तथा श्रद्धेय डा. रामचन्द्र द्विवेदी ने वहुमूल्य सुझाव देकर मुझे अनुगृहीत किया, तदर्थ मैं उनका आभारी हूं।

पुस्तक मैं अपने गुरुवर डा. गोविन्द चन्द्र पाण्डे को भेंट कर रहा हूं।

झूलेलाल प्रेस के मालिक एवं प्रकाशक को भी मैं धन्यवाद देता हूं।

पद्य लेखन का मुझे विशेष अभ्यास नहीं है और शिखरिणी में तो यह प्रथम ही प्रयास है, अतः सहृदय विद्वानों से आग्रह है कि बहुमूल्य सम्मति भेजकर, त्रुटियों की ओर निर्देश करके मुझे अनुगृहीत करें।

२९ अक्टूबर,

अखिल भारतीय प्राच्यविद्या सम्मेलन, जयपुर

विनीत

सुभाष वेदालङ्कार

ईश-स्तोत्रम्

१. स्मारं स्मारं सदाध्येयं सच्चिदानन्दमीश्वरम् ।
प्रणम्य सद्गुरून् पुण्यानीशस्तोत्र करोम्यहम् ।।

सदा ध्यान योग्य सच्चिदानन्द ईश्वर का स्मरण करके, श्रेष्ठ गुरुजनों
प्रणाम करके मैं ईशस्तोत्र बना रहा हूँ ।

२. ऊनविंशे शते वर्षे नवत्रिंशत्तथोत्तरे ।
विक्रमाब्दे निशीथेऽहमीशस्तोत्रं समारभे ।।

विक्रम संवत् १९३९ की (प्रथम) अर्धरात्रि में मैं 'ईशस्तोत्र' को आरम्भ
कर रहा हूँ ।

३. असारं संसारं सकल–सुखहारं सदुरितम् -
महं दर्शं दर्शं विवश इव पूज्याञ्च जननीम् ।
शयानां पश्यन्तीं यममिव च नृत्यन्तमतुलं,
करोमीशस्तोत्रं शिवमिह जनन्या अभिलषन् ।।

समस्त सुखों को हर लेने वाले, पाप ताप से भरे हुए असार संसार को,
गम्भीर रूप से रुग्ण होकर शय्या पर लेटी हुई, आंखों के सामने नृत्य करते
हुए से, अतुलनीय यम (मृत्यु) को मानो देखती हुई पूज्या माताजी को, विवश सा
देखता हुआ, उनके स्वास्थ्य और मंगल की इच्छा और (याचना) करता हुआ
मै 'ईशस्तोत्र' बना रहा हूँ ।

४. दयाया या मूर्तिः सकल-सुखदात्री सहृदया,
हृदा मृद्वी पूता हरिभजन-रक्ता च जननी ।
रुचिं धत्ते धर्मे विमल-हृदया सा शिवकरी,
चिराद्रोग-ग्रस्ता तपति सततं मां निशिदिवा ।।

जो मां दया की मूर्ति हूँ, समस्त सुखों को देने वालीहै। सहृदया, कोमल और पवित्र हृदय वाली जो सदा हरिभजन में संलग्न रहती है। धर्म में जिसकी अपार श्रद्धा है, जो स्वच्छ हृदय वाली और मंगलकारिणी है। वह (मां) लम्बे समय से रोग ग्रस्त है। अतः मेरा मन दिन रात दुःखी रहता है।

५. उदारं या धत्ते सरलहृदयं त्याग-समये,
धनान्नादेर्दाने भवति मुदिता या प्रमुदिता।
पवित्रा मातासावतिथिजन-सत्कार-मुदिता,
पुरस्तात् पश्यन्ती यममिव न शक्नोति चलितुम् ॥

त्याग (दान) के समय जो अपने सरल हृदय को (अधिक) उदार बना देती है। धन, अन्न (वस्त्र) आदि के दान देने में जो अत्यधिक प्रसन्न होती है। अतिथि-जनों के सत्कार में जो बड़ी प्रसन्न होती है। वह पूज्या मां अब मानो यम (मृत्यु) को सामने ही (आया हुआ) देखती हुई (बिस्तर पर पड़ी है) और चल फिर भी नहीं सकती।

६. अधन्यो दूरस्थो विवश इव पश्यामि विवशा-
मशक्तश्चायातुं परवश इहाहं प्रतिदिनम्।
प्रभुं दिव्यं याचे सकलजनवन्द्यं शिवकर-
महं स्मारं स्मारं निजजननदायास्तु कुशलम् ॥

मै अभागा (सरकारी सेवा के कारण) दूर (अलवर में) रहता हूँ, स्वयं विवश हुआ सा इस विवश माँ को देख रहा हूँ। पराधीन मैं प्रतिदिन यहां (जयपुर) आ जा नहीं सकता। (अतः इस स्तोत्र के माध्यम से), मंगलकारी, समस्त लोगों के द्वारा वन्दनीय, दिव्य परमात्मा को बार-बार स्मरण करके उससे जन्मदायिनी (मां) के कुशल क्षेम की याचना करता हूँ।

७. शतं ते नामानि प्रचुर-सुख-धामानि सततं,
मुनीन्द्रा ध्यायन्तो भव भयहरां मुक्ति मगमन्।
स्मरन्तान्येवाहं निजजनन दायास्तु कुशलं,
प्रभो! याचे दिव्यं परम-करुणाशीलमधुना ॥

हे ईश्वर तेरे सौ नाम अतुल सुख के धाम हैं। उनका निरन्तर ध्यान करते हुए श्रेष्ठ मुनिजन भव का भय हरने वाली मुक्ति को प्राप्त हुए। उन्हीं (तेरे) नामों को मैं याद करके (तुझ) परम करुणाशील, दिव्य परमेश्वर से पूज्या जननी की कुशलता मांगता हूं।

गुरु-वन्दना

८. धन्यः प्रियव्रतो वन्द्य आचार्यप्रवरस्सदा।
यस्य स्नेहाश्रयेणैव सम्पन्नं शिक्षणं मम॥

वन्दनीय आचार्य प्रवर प्रियव्रत (विद्यालंकार) सदा वन्द्य हैं। जिनके स्नेहमय आश्रय में ही मेरी शिक्षा दीक्षा सम्पन्न हुई।

९. रघुवीरो गुरुर्नम्यो ददौ मे यो महासुधीः।
बाल्ये व्याकरणज्ञानं रुचिमुत्पाद्य संस्कृते॥

गुरुवर रघुवीर (शास्त्री) नमस्कार योग्य हैं, जिस महान विद्वान ने बाल्यकाल में, संस्कृत में मेरी रुचि जाग्रत करके मुझे व्याकरण का ज्ञान दिया।

१०. रामनाथो गुरुर्वन्द्यः सर्वशास्त्र-दिवाकरः।
मनसा कर्मणा वाचा समो यो हितकारकः॥

गुरु श्री डा० रामनाथ (वेदालंकार) वन्दना योग्य हैं, समस्त शास्त्रों के सूर्य जो, मन वचन कर्म से सदा समान रहते हैं, और (शिष्यों के) हितकारी हैं।

११. धर्मदेवो गुरुर्नम्यो नैकभाषा महोदधिः
वेदज्ञो भाष्यकारो यो वेदज्ञानं ददौ मुदा॥

गुरुदेव धर्मदेव (विद्यामार्तण्ड) नमन योग्य हैं। अनेक भाषाओं के सागर, वेद के ज्ञाता, और वेदों (ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद) के (हिन्दी और अंग्रेजी में) भाष्यकार जिन्होंने प्रसन्न मन से मुझे वेद का ज्ञान दिया।

१२. साधुस्वभावः सरलो हृदा यः सौम्यो मुनिश्छात्रगणैरभीष्टः।
ऐतिह्यवेत्ता च गुरुर्नमस्यो वन्द्यस्सदासौ **पुरुषोत्तमो** मे ।।

साधु स्वभाव वाले, सरल हृदय, जो छात्रों में सौम्य मुनि के रूप में अभीष्ट व (अभिनन्दित) रहे, इतिहास के ज्ञाता वे गुरुवर डा० पुरुषोत्तम लाल जी सदा मेरी वन्दना के पात्र हैं।

१३. गुरुवर्यः सदा नम्यो मान्यो **मदनमोहनः** ।
दुःखे चैव सुखे चैव सामदो यः सदुक्तिभिः ।।

गुरुवर्य माननीय मदन मोहन जी सदा नमन योग्य हैं। जिन्होंने मेरे प्रत्येक सुख और (विशेष कर) दुःख में मधुर शान्तिदायक वचनों से मुझे सान्त्वना प्रदान की।

१४. **जगदीशो** गुरुर्वन्द्यः कोविदानां शिरोमणिः ।
व्याकरणञ्च साहित्यं नृत्यति यन्मुखाम्बुजे ।।

विद्वानों के शिरोमणि, गुरुवर जगदीश चन्द्र जी वन्दनीय हैं। जिनके मुख रूपी कमल में व्याकरण और साहित्य (शास्त्र) नृत्य करता है।

१५. भट्टश्री **मथुरानाथो** नम्यो गुरुवरो मम ।
विद्यानां पारदृश्वा यः कवीनाञ्च शिरोमणिः ।।

गुरु प्रवर श्री मथुरानाथ भट्ट मेरे नमन योग्य हैं। शिक्षाओं में पारङ्गत जो कवियों में अग्रगण्य हैं।

१६. कोविदाग्रं गुरुश्रेष्ठं गद्य-पद्य-महाकविम् ।
सर्व-विद्या-निधिं पुण्यं नौमि **नवलकाङ्करम्** ।।

कोविदों में अग्रगण्य, गद्य पद्य (काव्य) के महाकवि, समस्त विद्याओं के निधि पवित्र नवल (किशोर) कांकर को मैं नमस्कार करता हूँ।

१७. रामचन्द्रो गुरुर्वन्द्यो नैकशास्त्र-विशारदः ।
अद्वेष्टा क्रोधजित् वाग्मी लोकज्ञानं ददौ च यः ।।

अनेक शास्त्रों के विशारद, द्वेष रहित, क्रोध को जीतने वाले, प्रबुद्ध वक्ता गुरु रामचन्द्र जी वन्दना के योग्य हैं, जिन्होंने मुझे लोक (व्यवहार का) ज्ञान दिया।

ईश-स्तुति-भागः

१८. सर्वं प्रतिष्ठितमिदं प्रविभाति यस्मिन्,
सर्वेश्वरो यस्तु मतो महीयान् ।
सर्वं जगत् प्राणिति येन पुण्यं,
प्राणं प्रभुं तं मनसा नमामि ।।

यह समस्त (चर अचर जगत) जिसमें प्रतिष्ठित है, जो महिमामहिम **'सर्वेश्वर'** नाम से मान्य है । यह समस्त पुण्यमय संसार जिसके द्वारा सांस ले रहा है, उस **'प्राण'** और **'प्रभु'** नामक ईश्वर को मैं मन से प्रणाम करता हूँ।

१९. अकालं **कालं** वै भुवनविदितानां जनुवतां
त्रिकालज्ञं दिव्यं गतिविदमिमं सर्वजगताम् ।
अधिष्ठानं पुण्यं सकलतमसां ज्ञानप्रवणं
प्रभुं वन्दे व्याप्तं सकलजनवन्द्यं शिवकृतम् ।।

त्रिभुवन में जन्म लेने वालों के कालस्वरूप (स्वयं) कालरहित, **काल** (नामक भगवान) को, समस्त संसारों की गति को जानने वाले तीनों कालों के ज्ञाता इस **'त्रिकाल'** (नामक ईश्वर) को, समस्त (अज्ञान रूप) अन्धकारों के (नाशक) (प्रकाशक व अधिष्ठान) ज्ञान रूप, समस्त व्यक्तियों के द्वारा वन्दनीय, सर्वव्यापक, मंगलकारी **प्रभु** (नामक भगवान) को मै प्रणाम करता हूँ ।

२०. **विराजं** राजन्तं **वरुणमथ** संसारनृपतिं
कुबेरं कालाग्निं सकलजनकालं धनपतिम् ।
स्वराजं द्योतन्तं शिवकर **शिवं बन्धुमतुल**
महं वन्दे **विष्णुं** त्रिभुवन-विराजन्तमभयम् ।।

प्रकाशमान **'विराट्'** (नामक) को संसार के अधिपति **'वरुण'** (नामक ईश्वर) को, **'कुबेर'** को, समस्त जन (जन्तुओं) के काल **'कालाग्नि'** को **'धनपति'** को स्वतः, चमकने वाले **'स्वराट्'** को, मंगल करने वाले **'शिव'** को, अद्वितीय **'बन्धु'** को, त्रिभुवन में द्योतमान **'विष्णु'** को और **'अभय'** (नामक) ईश्वर को मैं प्रणाम करता हूं ।

२१. परं मुक्तं दिव्यं वसुमथ च राहुं भयकरं
परा-शक्ति लक्ष्मीं मनुजमिति च प्राणममजरम् ।
अनन्तञ्चाकाशं जगति च शयानन्नु पुरुषं
नतोऽहं होतारं सुरवरनमस्यं हितकरम् ॥

परम 'मुक्त', 'दिव्य', 'वसु' तथा भय पैदा करने वाले 'राहु', परा शक्ति 'लक्ष्मी' को मनुज, 'अजर' 'प्राण' 'अनन्त', 'आकाश', जगत में शयन करने वाले 'पुरुष', देवों के द्वारा नमस्करणीय, हितैषी, 'होता' के समक्ष मैं झुकता हूँ (प्रणाम करता हूँ) ।

२२. सुपर्णोऽसौ दिव्यो गणपतिरनादिश्च सविता
दयालुर्विश्वोऽसौ कविरपि गुरुश्चापि स शिवः ।
प्रियः शुक्रः शुद्धो बुधः इति च केतुश्च पृथिवी
पितासौ सर्वेषां सकलजननम्यश्च भगवान् ॥

(वह ईश्वर) 'सुपर्ण', 'दिव्य', 'गणपति', 'अनादि', है । (वह) 'दयालु', विश्व', 'कवि', 'गुरु', और 'शिव' है । 'प्रिय', 'शुक्र', 'शुद्ध', 'बुध', 'केतु', पृथिवी' है । 'पिता' (इत्यादि उक्त नाम वाला) 'भगवान' सब के लिए नमन योग्य है ।

२३. प्रभुः सत्यं ज्ञानं सदिति चिदिति ज्ञश्च मतिमा
नसावोङ्कारो वै मुनिगणहृदिस्थोऽक्षर इति ।
गणेशश्चादित्यो भवति च स माता प्रियकरः
सदाध्येयो ज्ञेयो सकलजनगेयः सुरवरैः ॥

(वह ईश्वर, सर्व-कर्म-समर्थ) 'प्रभु', 'सत्य', 'ज्ञान', 'सत्', 'चित्, 'प्राज्ञ', नाम वाला और मतिमान है । वही मुनिजन (और समस्त प्राणियों के) हृदय में रहने वाला 'ओंकार' है, वही 'अक्षर' है । वही प्रिय करने वाला 'गणेश', 'आदित्य', एवं 'माता' है । मेरे लिए, सभी मनुष्यों एवं श्रेष्ठ देव-जनों के लिए वह सदा ध्येय, ज्ञेय और गेय है ।

२४. **निराकारोऽनादो** भवति ननु कूटस्थ इति च
सदाद्वैतश्चाप्तः स ननु भगवान्निर्गुण इति ।
अचिन्त्यश्चिन्त्योऽसौ सकलजनचित्तैः धृतबलः
स **आचार्यो यज्ञो** मम हृदयवन्द्योऽ**ग्निरतुलः** ॥

वह (ईश्वर) **निराकार, अनादि और कूटस्थ** है। वह भगवान **'अद्वैत', 'आप्त', 'निर्गुण'** नाम वाला है। वह **'अचिन्त्य'** होकर भी सबके हृदयों में चिन्तन योग्य है। वह शक्ति सम्पन्न है। वह **'आचार्य', 'यज्ञ'** और **'अग्नि'** नाम वाला है। (ऐसे नाम वाले) उस (भगवान) की मैं वन्दना करता हूं।

२५. स **आत्मा** बुद्धोऽसौ भवति च य **आनन्द** इति च
स्वयम्भूर्यः सूर्यो यम इति च शेषोऽ**न्नमिति** च ।
स **विष्णुर्मित्रं** सः भवति खलु तद् **ब्रह्म** प्रगतं
स **आन्तर्यामीह** त्रिजगति च वन्द्यो नु सततम् ॥

(वह ईश्वर) **'आत्मा', 'बुद्ध', 'आनन्द'** इस (नाम वाला) है। जो (वह) **'स्वयम्भू', 'सूर्य', 'यम', 'शेष'**, और **'अन्न'** है। वह **'विष्णु', 'मित्र'**, (कहलाता) है। वही सर्वव्यापक **'ब्रह्म'** है। वह **'अन्तर्यामी'**, परमात्मा तीनों लोकों में मेरे लिए और प्राणी मात्र के लिए वन्दना योग्य है।

२६. **हिरण्यगर्भश्च पितामहश्च**
बृहस्पतिश्च प्रपितामहश्च ।
निरञ्जनः स परमेश्वरश्च
स **सृष्टिकर्ता** च **जगत्पतिश्च** ॥

वह (भगवान) हिरण्यगर्भ और पितामह है, वह **बृहस्पति** और **प्रपितामह** है। वह **परमेश्वर** और **निरञ्जन** है, वही **सृष्टिकर्ता** और **जगत्पति** कहलाता है। (मैं उसकी वन्दना करता हूं)।

२७. विधातारं वन्दे विभुमिह वरेण्यं बुधवरैः
जगत्कर्तारं तं त्रिभुवनविधर्तारमतुलम् ।
परं पूज्यं पुण्यं प्रभुमिह पराशक्तिमजरम्
सदाध्येयं सेव्यं सुरवरगुरुं शान्तमभयम् ।।

श्रेष्ठ विद्वानों के द्वारा वरण योग्य (भगवान) विभु और विधाता, त्रैलोक्य के विधर्ता, जगत्कर्ता (जगत् के निर्माता), (ब्रह्माण्ड में) अतुलनीय, परमपूज्य, पुण्य स्वरूप, पराशक्ति (अलौकिक शक्ति युक्त), अजर और प्रभु कहाता हैं । इस अभय, देवों के भी गुरु, शान्त, सदा सेवनीय, सदा ध्यान (मनन) के योग्य (ईश्वर) को मैं प्रणाम करता हूं ।

२८. कुमार्ग-प्रस्थानां सततमिह संतापजनकम्
रुजां वै सर्वेषामनिशमपहर्तारमभयम् ।
अहं रुद्रं वन्दे कुटिलजन-संरोधनपरं
नमस्यं भीतानामधिकमथ संलापनरतम् ।।

कुमार्ग पर चलने वालों को निरन्तर संताप देने वाले, समस्त रोगों को निरन्तर हरने वाले, अभय स्वरूप, कुटिल जनों को रोकने और (दण्डित करने) वाले, भयभीत जनों को और अधिक रुलाने वाले, सदा (सबके द्वारा) नमन योग्य रुद्र (नाम वाले ईश्वर) की मैं वन्दना करता हूं ।

२९. ददात्यानन्दं यो हरति खलु तापं मतिमता-
मयं लोको यस्मिन् वसति च सदा यो हि जगति
वसुं चन्द्रं वन्दे मुनिजनहृदाध्येयमजरम्
जगन्नाथं नित्यं मलयज इवानन्दमधुरम् ।।

जो (सबको) आनन्द देता है, जो समस्त बुद्धिमानों के संताप को हरता है । यह लोक जिसमें निवास करता है और जो इस लोक के भीतर निवास करता है । उस 'वसु' नाम वाले ईश्वर की, तथा समस्त ऋषि-मुनियों के हृदयों के द्वारा ध्यान (मनन) योग्य, 'अजर' (अमर), 'जगन्नाथ' (जगत् के

स्वामी), चन्दन के समान आनन्दमय, नित्य (परमेश्वर) की मैं वन्दना करता हूं।

३०. नमामीशं पुण्यं सकलजगतां स्वामिनमहं
समस्तैश्वर्याणामपि सुरवराणामधिपतिम्।
श्रुतीनां सर्वासाममृतमधुराणाञ्च विमलं
प्रदातारं वन्द्यं विकल-जन-संताप-हरणम्॥

मैं पुण्यस्वरूप समस्त लोकों के स्वामी, समस्त ऐश्वर्यों और श्रेष्ठ देवों के अधिपति, अमृत के समान मधुर (वाणी वाले) वेदों को (जगत्-कल्याण के लिए) देने वाले, सदा शुद्ध, वन्दनीय, दुखियों का संताप हरने वाले '**ईश**' को नमस्कार करता हूं।

३१. भवं यं रुद्रेन्द्रा वरुणमरुतो दिव्यवचनैः
सदा यं गायन्ति प्रखरमतयो वेदगतयः।
मुदा गायन्तीशाः सरलहृदया योगिमुनयः
सदानन्दं वन्दे भवभयहरं तं शिवमहम्॥

रुद्र, इन्द्र, वरुण, मरुत, (आदि) देवता जिस परमेश्वर की दिव्य वचनों से (स्तुति करते हैं और). प्रखर बुद्धि वाले, वेद में गति रखने वाले, (वेदज्ञ) जिसकी सदा स्तुति गाते हैं। सरल हृदय वाले, (तप द्वारा सब कुछ करने में) समर्थ योगी और मुनिजन, प्रसन्नतापूर्वक जिसका ध्यान करते हैं, उस सदा आनन्द रूप, भव के भय को हरने वाले '**शिव**' की मैं वन्दना करता हूं।

३२. कविं वन्दे विष्णुं जगति विततं पुण्यमजरं
व्रणैर्हीनं शुद्धं सकल-जन-सेव्यं शिवकरम्।
श्रुतीनां वक्तारं त्रिभुवनविधर्तारमजयं
जनैः प्रातर्नित्यं स्मृतिपथमिहानीतमभयम्॥

(वेद रूपी काव्य के निर्माता) कवि, जगत् में व्याप्त 'विष्णु', पुण्यमय, 'अजर' (जीर्ण न होने वाले) समस्त घाव आदि से रहित, 'शुद्ध', मंगल करने वाले, समस्त लोगों के लिए सेवनीय, श्रुतियों (वेदों) के वक्ता, त्रिभुवन के विधर्ता (धारण पोषण करने वाले) अजय (अपराजेय), प्रातःकाल में सब के द्वारा स्मरण किये जाने वाले, अभय (भयरहित), नित्य (ऐसे उक्त नाम वाले ईश्वर) की मैं वन्दना करता हूँ।

३३. अहं सर्वाधारं समसुखविधानं निरवधिं
निराकारं नित्यं मुनिजनवरेण्यं हितकरम्।
सदा ज्ञेयं ध्येयं हृदयपुटपेयं सुविमलं
मुदा वन्दे चित्ते सकलजनहार्यं हरिमिमम्॥

मैं सर्वाधार (सबके आश्रयभूत), समस्त सुखों के विधाता, अवधि रहित (असीम), निराकार (जिसका कोई आकार नहीं), नित्य, मुनिजनों के द्वारा वरणीय, हित करने वाले, सदा (सबके लिए) ज्ञेय (जानने योग्य), ध्येय (चिन्तन करने योग्य), हृदय-पुट के द्वारा पेय (पीने योग्य), स्वच्छ, चित्त में धारण करने योग्य, सब लोगों के द्वारा हृदय में ले जाने योग्य, इस 'हरि' (नामधारी ईश्वर) को प्रसन्नतापूर्वक मैं प्रणाम करता हूँ।

३४. मुदा ज्ञेयं वाचा श्रुतिविमलया भक्तिबलया
हृदा ध्येयं नम्यं सकलगुणगम्यं प्रभुमहम्।
सुधापेयं दिव्यं नरवरवरेण्यं मधुमयं
सुरैः सेव्यं वन्दे परममहिमानं निशिदिवा॥

वेद के अध्ययन से निर्मल, भक्ति रूपी शक्ति वाली, वाणी के द्वारा प्रसन्नतापूर्वक स्तुति गान योग्य, हृदय से मनन योग्य, नमन योग्य, समस्त गुणों के द्वारा ही गम्य (प्राप्य), अमृत के समान पेय, दिव्य, श्रेष्ठ नर (नारियों) के द्वारा वरेण्य, मधुमय, देवताओं के द्वारा भी भजनीय, परम (अद्भुत) महिमा वाले प्रभु की मैं दिन रात वन्दना करता हूँ।

३५. **सखायं** सर्वेषां **वरुण**मथ **मित्र**ञ्च **मरुतं**
सुपर्णं तं दिव्यं मुनिजननमस्यं शिवकरम् ।
गरुत्मन्तं पुण्यं सुरभजनगम्यं **हरि**महं
नमामी**श**ञ्चा**ग्नि** श्रुतिनिहितरूपं सुखकरम् ।।

सबके '**सखा**', '**वरुण**', और '**मित्र**', '**दिव्य**', मुनिजनों द्वारा वन्दनीय उस '**गरुत्मान**' को, पुण्यरूप, देवताओं के द्वारा भजन से गम्य (प्राप्य), **हरि** को, वेद में जिसका स्वरूप वर्णित है, ऐसे उस अग्नि नाम वाले, सुखकारी '**ईश**' को मैं नमस्कार करता हूँ ।

३६. जगत्सृष्टेरादौ जनयसि चलञ्चाचलमपि
जगत्कर्तः **ब्रह्मन्** वितरसि पदार्थं हितकरम् ।
जनानां भूत्यर्थं विहरसि च **विष्णो** ! त्रिभुवने
शिवस्त्वं संहारं नयसि भुवनञ्चान्तसमये ।।

हे जगत्कर्ता ब्रह्म ! आप सृष्टि के आदि में चल और अचल जगत को उत्पन्न करते हो । (आप ही समस्त उपयोगी) हितकर पदार्थ वितरित करते हो । हे विष्णु ! जन कल्याण के लिए आप त्रिभुवन में (व्याप्त होने से) विचरण करते हो और लोक के पालन पोषण में संलग्न रहते हो । हे शिव ! प्रलय काल में आप ही भुवन का संहार कर देते हो ।

३७. अहं न्यायाधीशं **मुनिजनहृदीश**न्नु **वरुणं**
मृगाणां सर्वेषामपि जलचराणाञ्च वयसाम् ।
गतीनां वेत्तारं सकलगतिविद्भिर्निजचरैः
सपाशं तं वन्दे सुरजनमस्यं शिवकरम् ।।

मैं मुनि जनों के हृदय के स्वामी वरुण को प्रणाम करता हूँ । जो समस्त पशु-पक्षियों और जलचर प्राणियों की गति (समस्त गतिविधियों) के ज्ञाता अपने गुप्तचरों के द्वारा जानने वाला है । जो पाश से युक्त है । जो मंगलकारी वरुण (पुरुष तो क्या) समस्त देवताओं के द्वारा भी नमस्कार योग्य है । उसकी मै वन्दना करता हूँ ।

३८. चतुर्णां वर्णानामपि शिवकराणाञ्च जनक-
मिदं भूतं भव्यं सकलमपि यद्रूपमतुलम् ।
तनौ ब्रह्माण्डेऽस्मिन् पुर इव शयानञ्च पुरुषं
प्रभुं वन्दे दिव्यं परमपुरुषं पावकमहम् ।।

मैं उस प्रभु की वन्दना करता हूँ । जो मंगल कारक चारों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र) वर्णों का जनक है । भूत भविष्य और वर्तमान जिसका रूप है । ब्रह्माण्ड रूप शरीर में नगर के समान जो शयन करने वाला पुरुष (रूप) है । जो पवित्र करने वाला दिव्य परमपुरुष है ।

३९. प्रजानां यो पाता सकलसुखदाता च नमतां
पतिर्यो लोकानां त्रिभुवनगतानाञ्च बृहताम् ।
परो बुद्धेर्देवोऽसुरसुरगणानां गुरुतमः
सदा नम्यो वन्द्योऽसुरसुरगुरुर्देव इह मे ।।

वह ,देव' (ईश्वर) इस लोक में सदा मेरे और लोकवासियों के द्वारा नमस्कार एवं वन्दना योग्य है । जो समस्त प्रजाओं का पालन करने वाला है । जो विनम्र (नमनशील पुरुषों) को समस्त सुखों को देने वाला है । जो त्रिभुवन में स्थित महान् लोकों का (एक मात्र) अधिपति है । जो श्रेष्ठतम एवं महत्तम देव सुर और असुर सभी की बुद्धि से परे (दुर्बोध) है ।

४०. नियन्तः ! लोकानां नियमयसि लोकत्रयमिदं
जनानां दण्ड्यानां त्वमसि खलु हन्ता निशिदिवा ।
नमस्ते देवेश ! त्वमसि विनियन्ता सदसतां
यमस्त्वं कृत्यानां भवसि फलदाता च सततम् ।।

हे लोक नियन्ता (परमेश्वर) आप तीनों लोकों को नियन्त्रित करने हो (उन्हें नियम में चलाते हो) । आप दण्डनीय पुरुषों के दिन रात मारने वाले हो । हे देवेश ! आपको नमस्कार है । आप ही तो 'यम' हो और मनुष्यों के समस्त भले बुरे कर्मों के नियामक (एवं ज्ञाता हो) । आप ही निरन्तर (कर्मानुसार) फल देने वाले हो ।

४१. उग्रा धरा येन दृढीकृता वै
स्थैर्यं गतं यस्य च खं महिम्ना ।
यच्छक्तितः स्वश्च दृढो विभाति
देवः स इन्द्रः सुतरां प्रणम्यः ।।

मैं उस इन्द्र (परमेश्वर) को अत्यधिक प्रणाम करता हूँ, जिसने उग्र पृथ्वी को दृढ़ किया। आकाश जिसकी महिमा से स्थिरता को प्राप्त हुआ। जिसकी शक्ति से द्युलोक दृढ़ हुआ शोभित होता है।

४२. भूतञ्च भव्यञ्च भविष्यमेव
येनामृतेनैव परिप्लुतं वै।
यस्सप्तहोता वितनोति यज्ञं
वन्द्यः स **ईशो** मनसा नमस्यः ।।

भूत, वर्तमान और भविष्य जिस अमृत ईश्वर के द्वारा ही नियन्त्रित हैं। जो सप्तहोता (सृष्टि) यज्ञ करने वाला है, उस नमस्कार करने के योग्य **'ईश'** की मैं हृदय से वन्दना करता हूं।

४३. यश्चात्मदो यो बलदो वरीयान्
विश्वं जगत् लोकमिमञ्च शास्ति।
यो योगिनां यो विदुषां नमस्यः
वन्द्यः स देवो **जगदीश** एषः ।।

जो वरणीय प्रभु आत्मिक और शारीरिक बल को देता है। जो समस्त जगत् और इस लोक पर शासन करता है। जो विद्वानों और योगियों के लिए भी नमस्कार योग्य है। उस इस **'जगदीश'** (जगत् का स्वामी ईश्वर) की मैं वन्दना करता हूँ।

४४. पिता प्रजानां विदितो वरीयान्
यो देवतानाञ्च मतो महीयान्।
वक्ता श्रुतीनामुदितो गरीयान्
वन्द्यः सदा **लोकपतिस्स** धीमान् ।।

जो (वरणीय) श्रेष्ठ (ईश्वर) समस्त प्रजाओं का पिता जाना जाता है। जो देवों में सर्वाधिक महान् मान्य है। जिस (प्रशंसनीय व) श्रेष्ठ (ईश्वर) को वेदों का उपदेश देने वाला कहते हैं। वह धीमान् लोकपति (परमात्मा) सदा वन्दनीय है।

४५. हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे
लोकत्रयस्यैव पतिर्वरेण्यः।
दधौ स भूमिं प्रथितामुतद्यां
प्रजापतिस्सैष न कैर्नमस्यः॥

हिरण्यगर्भ (परमेश्वर) सृष्टि के आरम्भ में (अकेला ही) विद्यमान था। वही तीनों लोकों का वरणीय पति (स्वामी) है। वही फैली हुई पृथ्वी और द्युलोक को धारण करने वाला है। (ऐसा) वह यह प्रजापति (ईश्वर) किसके लिए नमन योग्य नहीं है। (अर्थात् सबके द्वारा नमस्करणीय है)।

४६. दाता सुखानामविताऽऽबलानां
कर्ता श्रुतीनां सुमतेर्विधाता।
हर्ता रिपूणां विहन्ता मलानां
नम्यः सुरेशो ममेशो नराणाम्॥

जो सुखों को देने वाला है। बल हीनों का रक्षक है। वेदों का बनाने वाला है। श्रेष्ठ बुद्धि का विधायक है। शत्रुओं को दूर करने वाला है। समस्त मलों (पाप, अपवित्र कार्यों का) नष्ट करने वाला है, वह सुरेश (देवताओं का अधिदेवता), महेश (ईश्वर) सभी मनुष्यों के द्वारा वन्दना योग्य है।

४७. नमामि दिव्यं पुरुषं महन्त-
मादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।
यं कं विदित्वा पुरुषा यतीशा
मुक्तिं लभन्ते सुधियः सुखेन॥

मैं उस दिव्य महान् पुरुष (ईश्वर) को प्रणाम करता हूँ, जो आदित्य तुल्य वर्ण वाला (एवं तेजस्वी) है, समस्त अन्धकारों से परे है। जिस (ईश्वर)

को जान लेने के पश्चात् मुनियों में अग्रगण्य और विद्वान लोग सुखपूर्वक मुक्ति प्राप्त करते हैं।

४८. वन्द्यो **मनस्वी परिभूः स्वयम्भू-**
रीशो महेशो जगदीश एषः ।
व्याप्य स्थितो विश्वमिदं जगद्यः
संचालयन् तिष्ठति यो महिम्ना ।।

वह मनस्वी, परिभू (सर्वत्र विद्यमान), स्वयम्भू (स्वयं की सर्व-शक्तिमत्ता से होने वाला), जगत्पति (जगदीश), बड़े से बड़े का भी स्वामी (महेश) ईश्वर वन्दना के योग्य है। जो वह ईश्वर इस सारे संसार को व्याप्त करके स्थित है और जो अपनी महिमा से (सबको) चलाता हुआ (ब्रह्माण्ड में) रहता है।

ईश-महिम-भागः

४९. अपाणिश्चापादो विचरति जवेन त्रिभुवने
ह्यकर्णस्सम्पूर्णां श्रुतिपथि च वृत्तिं नयति सः ।
अचक्षुर्द्रष्टासौ परमपुरुषो नम्य इह यः
स वेत्ता सर्वेषां न ननु विदितः कैश्चिदपि व ।।

वह परमेश्वर बिना हाथ पैर के भी त्रिभुवन में तीव्र गति से विचरण करता है। कान से रहित होकर भी (ब्रह्माण्ड के समस्त) वृत्तान्त को सुन (जान) लेता है। आंख के बिना भी सब कुछ देख सकता है। वह परम पुरुष इस लोक में नमन योग्य है। वह सब (जड़ चेतन जगत् की गतिविधियों) को जान लेने वाला है। किन्तु वह किसी के द्वारा नहीं जाना गया है। (न ही सरलता से जाना जा सकता है)।

५०. स सूक्ष्मः सूक्ष्माद्वै भवति महतां यो गुरुतमो
ह्यदूरो भक्तानां श्रुतिपथगतानाञ्च मनसः ।
परं दूरञ्चासौ कुपथचलितानान्नु सततं
सदा वन्द्यो देवः स खलु सुखदाता त्रिजगताम् ।।

वह (ईश्वर) सूक्ष्म से भी सूक्ष्म है, और बड़ों से भी बड़ा है। वेद के (द्वारा प्रतिपादित) मार्ग पर जाने वालों के तथा भक्त जनों के मन से वह दूर नहीं है (अर्थात् पास से ज्ञात है)। कुमार्ग पर जाने वालों से वह निरन्तर बहुत दूर है। त्रिभुवन का सुख दाता वह भगवान् सदा वन्दना योग्य है।

५१. स हर्ता दुःखानां सकल-विबुधानां गुरुवरः
स कर्ता पुण्यानां विचरति मुदासौ शिवकरः ।
स धर्ता लोकानां सकलहितकार्ये च निरतः
न कस्यासौ वन्द्यः सकल-सुखदाता श्रुतिविदाम् ।

वह समस्त विद्वानों के दुःखों को हरने वाला है। सदा पुण्य का कर्ता मंगलकारी वह ईश्वर प्रसन्नतापूर्वक (सर्वत्र) विचरण करता है। वह समस्त लोकों का धारण पोषण करने वाला है। सबके मंगल करने में संलग्न है। वेद के ज्ञाता (और उसके अनुसार चलने वालों) को सुख देने वाला वह (ईश्वर) किसकी वन्दना के योग्य नहीं है।

५२. द्विपादानामीशः स खलु मनुजानाञ्च वयसा-
ञ्चतुष्पादानाञ्च प्रभुरिह वरेण्यः स भगवान् ।
महिम्ना यो राजा भवति चरताञ्चाप्यचरतां
सदासौ देवानां मम च ननु वन्द्यो गुरुतमः ।।

वह ईश्वर दो पैर वाले (पक्षियों व जन्तुओं) का स्वामी है। यही नर नारियों और पक्षियों का स्वामी है। चौपायों (पशु आदि) का भी वही भगवान् स्वामी है। जड़ चेतन सभी का जो अपनी महिमा से राजा है। वह श्रेष्ठतम ईश्वर समस्त देवों (मनुष्यों) और मेरे लिए वन्दना योग्य है।

५३. सदान्नं भूतानां भवति ननु मूलं जनुवता-
मथेदं मेघेभ्यः प्रभवति सदा चात्र विविधम् ।
प्रजायन्ते यज्ञात्सजलजलदाश्चापि रसदाः
स यज्ञः कर्मभ्यो भवति भगवन् तानि भवतः ॥

अन्न समस्त जन्मधारी जीव जन्तुओं का मूल है, और वह विविध प्रकार का अन्न मेघों से उत्पन्न होता है। रस दायक जल से युक्त वे बादल भी यज्ञ से पैदा होते हैं। वह यज्ञ कर्म से पैदा होता है, और वे कर्म, हे ईश्वर ! आप से ही आविर्भूत होते हैं। (अर्थात्—वस्तुतः सबके मूल और प्राण आप ही हैं)।

५४. कदाचिन्नो जातः क्वचिदपि न मृत्युञ्च वहसे
पुराणोऽजो नित्यो गुणिजनवरेण्योऽसि भगवन् ।
त्रिकालात्त्वञ्चोर्ध्वं वससि च सदा तत्र नहि किं ?
अनादिर्दुर्ज्ञेयः सततमुदितस्त्वञ्च मुनिभिः ॥

हे ईश्वर ! आप कभी पैदा नहीं हुए हो और आप कभी मृत्यु को भी प्राप्त नहीं होते हो। आप पुराण हो, नित्य हो। आप ऋषि मुनियों के द्वारा वरणीय हो। आप वर्तमान भूत भविष्यत् तीनों कालों से ऊपर उठे हुए होकर सदा उनमें नहीं रहते हो क्या ? (अर्थात् समस्त कालों में बसे हो)। सभी मुनिजन आपको निरन्तर अनादि, दुर्ज्ञेय, (जिसे कठिनाई से जाना जा सके) कहते हैं।

५५. पिता त्वं माता त्वं त्वमसि मम बन्धुर्हितकरः
सखा त्वं दैत्यारे सकलजगतां मङ्गलकरः ।
महीयांस्त्वं विद्या द्रविणमसि च त्वं सुविदितः
प्रभो किं नासि त्वं भवसि जनवन्द्यो सुरवरः ॥

हे प्रभो ! आप पिता हो, आप ही माता हो। आप ही हमारे हित-कारी बन्धु हो। आप ही हमारे सखा हो। समस्त पीड़ादायक दैत्यों के शत्रु

हो। आप समस्त जगतों के मङ्गलकर्ता हो। सबसे महान् आप ही विद्या हो, धन हो। आप (इन सब रूप में) सुविदित हो। हे प्रभो देवताओं में भी श्रेष्ठ आप क्या क्या नहीं हो? (अर्थात् आप सब कुछ हो)।

१६. निराकरोऽनादिस्त्वमसि नहि कुत्रेति निगद
न चान्तस्ते विद्मस्त्रिभुवन-नियन्तासि भगवन्।
समूर्तिं त्वां कृत्वा भजननिरता मन्दमतयो
गुणानेतान् सर्वांस्तव ननु विप्लुतान् विदधति ॥

हे ईश्वर! निराकार अनादि आप कहां नहीं हो, यह तो बताओ (अर्थात् सर्वत्र हो)। आपका अन्त भी किसी से ज्ञात नहीं। प्रभो! आप त्रिभुवन के नियामक हो। (दुर्भाग्य से) चन्द मूर्ख लोग आपकी (साकार) मूर्ति बनाकर आपके भजन में लगे हैं और आपके इन अनादित्व, निराकारत्व, अन्त शून्यत्व इत्यादि गुणों को लुप्त (असिद्ध) कर रहे हैं।

१७. अशब्दश्चास्पर्शो भवसि भगवन् रूपरहितो
ह्यगन्धस्त्वं देव प्रचरसि रसाच्चैव रहितः।
अनाद्यन्तं दिव्यं य इह खलु जानाति सततं
प्रभो! मृत्योर्दूरं भवति पुरुषोऽसौ सुचरितः ॥

भगवन्! आप शब्द, स्पर्श, रूप और गन्ध से रहित हो, आप रस शून्य होकर सर्वत्र विचरते हो (व्यापक हो)। आदि और अन्त से रहित दिव्य आपको जो निरन्तर उक्त रूप में जानता है। प्रभो! सच्चरित्र वाला वह (भाग्यशाली) पुरुष मृत्यु के बन्धन से भी दूर हो जाता है।

१८. गतो मासो नूनं श्वसिति मम माता कथमपि
कृपायास्ते हेतोश्चलति च जनन्यास्तनुरपि।
ममायं विश्वासस्तव करुणया जीवनमिव
नवं सम्प्राप्यासौ मुदमिह भृशं दास्यति पुनः ॥

एक मास बीत गया है। हे प्रभो! आपकी कृपा से अभी भी मेरी पूज्य माता सांस ले रही है (जी रही है)। पूज्या जननी का शरीर भी (थोड़ा

बहुत) चल (और काम कर) रहा है। हे ईश ! मेरा दृढ़ विश्वास है कि आपकी अनुपम) कृपा से पूज्य माता जी नया जीवन प्राप्त करके पुनः सब में खुशियाँ बिखेरेंगी।

५६. शरण्यो लोकानां त्वमसि जगताञ्चाश्रय इह
वरेण्यस्त्वञ्चैको भवसि विदुषाञ्चैव शरणः ।
प्रभो कर्ता भर्ता त्वमसि खलु हर्ता च जगतां
प्रकाशः सर्वेषां त्रिभुवन-नमस्योऽसि भगवन् ॥

हे ईश्वर ! आप सभी लोकों की शरण योग्य हो। आप ही समस्त संसारों के आश्रय स्थान हो। एक आप ही वरण करने योग्य हो। विद्वानों के भी आप शरण हो (सामान्य जन का तो कहना ही क्या)। हे ईश ! आप ही जगत् के कर्ता भर्ता और संहर्ता हो। आप ही सबके प्रकाश स्तम्भ हो। आप समस्त त्रिभुवन में नमस्कार योग्य हो।

६०. प्रभो ब्रह्माण्डेऽस्मिन् चलसि खलु तिष्ठन्नपि मुदा
स्वगत्या त्वं तीव्रं हससि सकलं तत्त्वमतुलम् ।
त्वमन्तर्लोकानां भवसि च महिम्ना बहिरपि
त्विदं चित्रं रूपं चकित इव पश्यामि मुदितः ॥

हे ईश्वर ! इस ब्रह्माण्ड में ठहरे हुए भी आप चलते हो। अपनी (अलौकिक) गति से भी अतुलनीय (तीव्रगामी मन आदि) तत्त्वों की खूब हंसी उड़ाते हो (अर्थात् सबसे तेज चलते हो)। आप अपनी महिमा से लोकों के अन्दर रहते हो और बाहर भी। हे प्रभो ! आपके इस विचित्र (महिमाशाली) रूप को मैं चकित हुआ देखता हूँ और प्रमुदित होता हूँ।

६१. अदाह्यो दाहेन प्रचरसि न दग्धश्च भगव-
न्नशोष्यो वातेन प्रभवसि न शुष्कश्च भवितुम् ।
सदाच्छेद्यः शस्त्रैर्भवसि नहि छिन्नः कथमपि
प्रभो ! त्वञ्चाक्लेद्यो भवसि न जलैः क्लिन्न इह च ॥

हे ईश्वर ! आग आपको जला नहीं सकती। अतः आग से दग्ध (जले

हुए, बिना आप सर्वत्र गति करते हो। आप वायु के द्वारा सुखाने योग्य नहीं हो अतः, वायु कथमपि आपको सूखा नहीं सकती। शस्त्रों से आपका छेदन नहीं हो सकता, अतः आप सर्वविध (शस्त्रों) से छिन्न भिन्न नहीं होते हो। हे प्रभो आप अक्लेद्य (न गीला होने योग्य हो) अतः जल आपको गीला नहीं कर सकते।

६२. शयानस्त्वं देव व्रजसि परितोऽत्र त्रिभुवनं
सदासीनो दूरं प्रचलसि महिम्ना च भगवन्।
न लभ्यस्त्वं मत्या मधुरवचनैर्नापि सुखदैः
स लब्धुं त्वां शक्तो मनुज इह यस्ते प्रियतमः ।।

हे देव ! आप सोये हुए भी त्रिभुवन में सर्वत्र चले जाते हो। आप बैठे हुए होकर भी अपनी महिमा से दूर तक चलते हो। सुखदाता आपको न बुद्धि से प्राप्त किया जा सकता है न मधुर सुखद वचनों से। आपको तो वही पुरुष प्राप्त कर सकता है जो (अपने भक्ति आदि गुणों के कारण) आपका प्रियतम है।

६३. अनेजंस्त्वं ब्रह्मन् विचरसि जवीयोऽत्र मनसो
विदुस्ते विद्वांसो गतिमिह न देवा न मुनयः।
सदा सर्वत्र त्वं विहरसि च देव त्रिजगति
महिम्नां ते पारं प्रभवति न लब्धुं जगदिदम् ।।

हे ब्रह्मन् ! आप न चलते हुए भी मन से भी तेज दौड़ते हो। आपकी गति को इस लोक के विद्वान, मुनिगण और देवता तक भी नहीं जान सकते (सामान्य जन तो कैसे जान पायेंगे)। हे देव ! आप त्रिजगत् में सदा सर्वत्र भ्रमण करते हो। यह संसार आपकी महिमा का पार नहीं पा सकता।

६४. सदा लोके सर्वा सरसि सरिता सर्वसुखदा
नगा वै सेवायां सततनिरतास्तुङ्गशिखराः।
हिते लग्ना वृक्षाः कुसुमफलपत्रैश्च परितः
प्रभो सर्वैरेतैस्तव सुमहिमा द्योत्यत इह ।।

लोक में सबको सुख देने वाली समस्त नदियां प्रवाहित होती हैं। उत्तुङ्ग शिखर वाले पर्वत (जन सामान्य की) सेवा में निरन्तर संलग्न हैं। चारों ओर फूल फल और पत्तों के द्वारा समस्त वृक्ष सदा हित कार्य में तत्पर हैं। हे ईश्वर ! ये सभी आपकी महिमा का ही बखान कर रहे हैं।

६५. समुद्रा गम्भीरा निहित-निधिगर्भा जलधयो
जनानां सेवायां सजलचररत्ना हितकराः।
नगास्तुङ्गा वृक्षा अमलजलयुक्ताश्च सरिता
इमे ते व्याख्यान्ति प्रबलमहिमानन्नु भगवन् ॥

(मणि रत्न आदि) निधियों को गर्भ में रखने वाले जल को धारण करने वाले ये गम्भीर समुद्र हैं जो जलचर (मछली आदि) प्राणियों और रत्न आदि के द्वारा हित करने वाले हैं। (ये विशाल) पर्वत और ऊँचे वृक्ष हैं। ये निर्मल जल से भरी हुई नदियां हैं। हे ईश ! ये सब आपकी अद्भुत शक्ति वाली महिमा का ही तो वर्णन करते हैं।

६६. इदं नक्षत्राणां वियति विततं जालमतुल-
मयं सूर्यश्चद्रो वितरति च दिव्यां द्युतिमिह।
धरित्रीयं पुण्या भ्रमति सततं पूर्णगतिना
व्यवस्थायां श्रीमन् ! तव खलु महिम्नां फलमिदम् ॥

गगन में फैला हुआ नक्षत्रों का यह (अद्वितीय) जाल है। यह सूर्य और चन्द्रमा अलौकिक दिव्य प्रकाश को इस लोक में फैलाते हैं। यह पुण्यमय भूमि निरन्तर आप की व्यवस्था में रहकर पूर्ण गति से घूमती है। हे प्रभो ! यह सब आपकी महिमाओं का ही फल है।

६७. अयं सूर्यो देवो वितरति सदा तापमजरं
द्युतिं चन्द्रो यच्छन् विचरति शिवायैव जगतः।
उभाभ्यां लोकोऽयं विधि-विहित-कर्माणि कुरुते
प्रभो ! दिव्यावेतौ तव खलु महिम्ना सुखकरौ ॥

यह सूर्य सदा अजर (न समाप्त, न जीर्ण शीर्ण होने वाले) ताप को

देता है। चन्द्रमा कांति को देता हुआ जग के मंगल के लिए ही विचरता है। उन दोनों (सूर्य, चन्द्र) के द्वारा ही यह जन लोक विधि द्वारा निर्धारित कर्तव्य कर्मों को करता है। हे ईश्वर! ये दोनों दिव्य (देवता) आपकी महिमा से ही सुखदायी बने हुए हैं।

६८. खगानां तिर्यञ्चामपि जलचराणाञ्च गमनं
प्रभो त्वं जीवानामपि लघुमतानां गतिविधिम् ।
नियन्तस्त्वं वेत्सि प्रभवसि नियन्तुं जगदिदं
न किञ्चित्ते गुप्तं लघ-महदथाप्यस्य जगतः ॥

हे ईश्वर! जगन्नियन्ता आप पशु पक्षियों और जलचरों की गति को जानते हो। आप (बड़े से बड़े) और छोटे से छोटे जीवों की भी गतिविधि को जानते हो। आप ही इस जगत को नियन्त्रित करने में समर्थ हो। जगत की छोटी बड़ी कोई भी बात आप से छिपी हुई नहीं है।

६९. अतुल्यं ते कार्यं भवति विततं नेत्रपथगं
न ते तुल्यो लोके प्रबल इह चैवास्ति भगवन् ।
पराशक्तिर्दिव्याऽपरिमित-बलस्य वितता
क्रियाऽतुल्यं ज्ञानं तव गुरु सदा यच्छ्रुति गतम् ॥

आपका अतुलनीय (उक्त महिमामय) कार्य हमें दिखाई दे रहा है। हे ईश्वर! आपके समान इस लोक में कोई भी शक्तिमान् नहीं है। असीमित बल वाले आपकी दिव्य शक्ति सर्वत्र फैली सी लगती है। आपकी क्रिया अद्वितीय है। वेद में स्थित आपका ज्ञान महान (और अद्वितीय) है।

७०. पयांसि गावश्च फलानि वृक्षाः
जलानि नद्यो वितरन्ति लोके ।
तापं ददातीह रविर्विधुश्च
द्युतिं मुदं देव तवाशिषा वै ॥

हे ईश्वर! आपके आशीर्वाद से ही, गौवें दूध देती हैं, वृक्ष फल देते

हैं, नदियाँ इस संसार को जल देती हैं। सूर्य जीवनदायी ताप देता है।
चन्द्रमा (अमृत-वर्षी) कान्ति और आनन्द देता है।

७१. भयं भीषणानां बलं निर्बलानां
गतिः सद्गतीनां मतिर्विश्रुतानाम् ।
धृतिर्निर्भयानां पतिर्देवतानां
प्रभुर्नम्यते त्वाश्रयोऽनाश्रितानाम् ।।

हे प्रभु ! आप भीषण व्यक्तियों और जीवों के भी भयदाता हो। आप निर्बलों के बल हो। विद्वानों की मति हो। भय हीन व्यक्तियों के धैर्य हो। देवताओं के भी पति हो। अनाश्रितों के आश्रय दाता हो। ऐसे आपको हम सब नमन करते हैं।

७२. प्रशास्ति यो विश्वमिदं विशालं
छायामृतं यस्य च मृत्युरस्ति ।
यच्छासनं देवगणैर्जनैश्च
सम्मान्यते सर्वसुरः स वन्द्यः ।।

जो परमातमा इस विशाल विश्व का शासक है। अमरत्व और मृत्यु जिसकी छाया के समान है। देवता और सामान्य जन जिसके आदेश का सम्मान (और पालन) करते हैं। वह सभी का (आराध्य) देव सदा वन्दना योग्य है।

७३. यश्चात्मदो यो बलदो मतश्च
कालत्रयस्यैव च यो विधाता ।
दधाति गर्भे विततन्नु लोकं
स विश्वदेवो वरणीय एव ।।

जो ईश्वर आत्मिक और शारीरिक बल को देने वाला माना जाता है। जो तीनों कालों का विधाता और नियामक है। जो फैले हुए लोक को अपने भीतर धारण करता है, वह विश्वदेव परमेश्वर ही केवल वरण (और पूजा) के योग्य है।

७४. परं मतं हीन्द्रियजालकं नो
तथेन्द्रियेभ्यश्च परं मनो वै।
मतिः परस्तान्मनसो मता च
प्रभो परस्त्वञ्च मतेर्मतोऽसि ।।

इन्द्रियों के जाल को श्रेष्ठ माना जाता है। इन्द्रियों से श्रेष्ठ मन है, और मन से बुद्धि कहीं अधिक श्रेष्ठ (रूप में) मान्य है। हे ईश्वर ! आप आप बुद्धि से भी (अप्राप्य अत एव) श्रेष्ठ माने जाते हो।

ईश-प्रार्थना-भागः

७५. प्रजायन्तां ब्रह्मन्निह बिविधविद्या द्विजवरा
धरायां राजन्या रिपुदलन-दक्षा-अविजिताः।
विजायन्तां वैश्या विदित-धन-विद्याश्च वणिजो
विराजन्तां शूद्राः सकल-जन-सेवासु निरताः ।।

हे ईश्वर ! इस भारत भूमि पर विविध विद्याओं के ज्ञाता श्रेष्ठ ब्राह्मण पैदा होवें। शत्रु दल को दल देने वाले अपराजेय क्षत्रिय (यहां पैदा) होवें। धन सम्बन्धी विद्या (अर्थशास्त्र) के व्यापारी वैश्य यहां जन्म लेवें। समस्त (ब्राह्मण। क्षत्रिय, वैश्य) लोगों की सेवा में संलग्न शूद्र यहा शोभित होवें।

७६. प्रजायन्तां पुण्याः प्रचुरपयसो धेनव इह
वृषा वोढारस्स्युर्मम खलु सुराष्ट्रे च भगवन्।
विजायन्ताञ्चाश्वा अनिलगतिका भूतल इह
प्रभो संजायन्तां विमलचरिता योषित इह ।।

हे प्रभो ! प्रचुर दूध देने वाली पुण्यदायिनी गौवें यहां पैदा हों। महान्

भार को ढोने वाले बैल मेरे सुन्दर राष्ट्र में भारी संख्या में होवें। हवा के समान गतिशील घोड़े इस भूतल पर होवें। हे ईश्वर! इस (देश में) पवित्र चरित्र वाली नारियां जन्म लेवें।

७७. रिपूणां जेतारो मम भुवि भवेयुस्सुरथिनः
सुवीरा जायन्तामिह ननु युवानस्सुचरिताः।
यथेच्छं पर्जन्याः प्रददतु पुण्यं पय इह
प्रभो संजायन्तां कुसुमफलशोभाश्च तरवः॥

हे ईश! मेरी मातृभूमि पर शत्रुओं को जीतने वाले, श्रेष्ठ रथ वाले वीर (क्षत्रिय) पैदा हों। यहां उज्वल चरित्र वाले युवक जन्म लेवें। बादल हमारी इच्छानुसार पवित्र जल देवें। फूल फल से सुशोभित अगणित वृक्ष यहां पैदा होवें।

७८. प्रभोऽस्माकं देशे प्रवहतु सदा पुण्यसलिला
जलं वै यच्छन्ती कृषिबहुलक्षेत्रेषु सरिता।
धरित्रीयं धन्या वितरतु सदा मोदमतुलं
सुमेघैर्दीयन्तां विमलमिह दिव्यञ्च सुजलम्॥

हे भगवन्। हमारे देश में सदा पुण्य जल वाली, कृषि बहुल क्षेत्रों को जल प्रदान करने वाली पवित्र नदियां बहें। यह धन्य धरती (मां) सदा अतुलनीय आनन्द प्रदान करें। सुन्दर मेघ सुन्दर स्वच्छ व दिव्य जल प्रदान करें।

७९. जनानां कृत्यानां त्वमसि ननु वेत्ता सदसतां
प्रणेता मार्गाणां सरलविषमाणां जनियुताम्।
प्रभो तापं हृत्वा मम नय सुदूरन्नु दुरितं
समस्तं मे भद्रं वितर भगवंश्च प्रियकरम्॥

हे ईश्वर! आप मनुष्यों के अच्छे बुरे सभी कार्यों के ज्ञाता हो। आप ही समस्त जीवधारियों के सरल और विषम सभी प्रकार के मार्गों के (प्रवर्तक व निर्माता हो। हे प्रभो मेरे समस्त ताप को दूर करके, सब पाप और कुटिल-

ताओं से मुझे मुक्त कर दो। हे प्रभो। मुझे सदा (सबका) प्रिय करने वाला कल्याण (मय गुण) प्रदान करो।

८०. प्रभो दिव्या देवा अतुल-गुणयुक्ताश्च मुनयो
मुदा यामक्षुण्णां सकलफलदात्रीं हितकरीम्।
सुमेधां सेवन्ते वितर मम सौख्याय सुभगा
मतुल्यां तां दिव्यां जगति हितकार्ये प्रणुदतीम्।

हे प्रभो! दिव्य गुण वाले देवता, अतुलनीय (तप, क्षमा आदि) गुणों से युक्त मुनिजन, जिस समस्त फलों को देने वाली, अक्षुण्ण (कभी न नष्ट होने वाली) सुमेधा को प्राप्त करके (उसके अनुसार) सेवन, आचरण करते हैं। सुख प्राप्ति के लिए उस (सौभाग्यदायिनी) ऐश्वर्यमयी, सदा जगत के हित में लगाने वाली अतुलनीय दिव्य प्रतिभा को मुझे भी प्रदान करो।

८१. चलं चित्तं यन्मे विहरति सुदूरं निशिदिवा
प्रसुप्ते वासुप्ते व्रजति मयि तापञ्च हरति।
अपूर्वं तल्लोकं विविधकरणे योजयति च
शिवं तल्लोकाय भवतु भगवन् ते करुणया॥

मेरा जो चञ्चल चित्त मेरे सोते या जागते रात दिन बहुत दूर तक विचरण करता है। ताप को हरता है और वह अपूर्व मन समस्त लोक को विविध कर्तव्य कर्मों में नियोजित करता है। हे प्रभो! आपकी कृपा से वह मेरा मन लोक के लिए कल्याणकारी होवे।

८२. दधासि त्वं तेजो मयि ननु तदाधेहि सततं
त्वमोजश्चैवासि प्रतनु मयि तच्चापि भगवन्।
वलं दिव्यं धत्से वितनु मम देहे तदजरं
सदा वीर्यं पासि प्रकुरु मम चाङ्गे तदतुलम्॥

हे ईश्वर! आप तेज स्वरूप हो (तेज धारण करते हो) कृपया मुझ में भी उसको स्थापित कीजिए। आप स्वयं ओज स्वरूप हो मुझे भी ओज

प्रदान कीजिए। आप अजर दिव्य शक्ति को रखने वाले हो, मेरे शरीर में भी उस शक्ति को फैलाओ। आप सदा वीर्य (पराक्रम) को रखते हो, मेरे अंगों में भी अतुलनीय वीर्य भर दो।

८३. इदानीं धर्मान्धा यवनहतका यान्ति परितः
सदा देशद्रोहे सततमिह सक्ताश्च कुटिलाः।
सुराष्ट्रं प्रच्छन्ना रिपव इव खण्डेषु भगवन्
यतन्ते ते कर्तुं कुरु तदभिलाषं प्रतिहतम् ॥

हे भगवन्! आज कल कुछ धर्मान्ध पापी यवन चारों ओर (दुर्भावना) से घूम रहे हैं। वे कुटिल लोग सदा निरन्तर इस भूमि पर देशद्रोह में ही संलग्न हैं। प्रच्छन्न शत्रुओं के समान वे इस सुन्दर भारत राष्ट्र को टुकड़ों में में बांट देने का प्रयत्न करते रहते हैं। हे ईश्वर! उनकी इस कुत्सित इच्छा को आप मार दीजिए।

८४. पुरा देवो रामः प्रहित इह हन्तुं दशमुखं
त्वया कंसं हन्तुं प्रहित इह कृष्णोऽथ भुवि च।
प्रभो धर्मध्वंसे कुटिलहृदया म्लेच्छहतका
रतास्तान् त्वं हन्तुं कमपि भगवन् प्रेषय खलु ॥

हे ईश्वर! पहले आपने रावण को मारने के लिए भगगवान राम को भेजा था। फिर कंस के नाश के लिए (योगिराज) कृष्ण को भेजा था। आज कल कुटिल हृदय वाले पापी म्लेच्छ (सत्य सनातन) वैदिक धर्म के विनाश में संलग्न हैं। भगवन्! उन्हें मारने के लिए अब फिर किसी (दिव्य पुरुष) को भेजिए।

८५. प्रभो दुःखाकीर्णं जगदिदमहो कण्टकयुतं
विपद्व्याधि-ग्रस्तं कुटिलजनभीतं भयकरम्।
रणज्वालाश्लिष्टं शमरहितमेतन्निशिदिवा
स्वयं त्वं नो रक्ष प्रहर ननु तापञ्च सकलम् ॥

हे प्रभो! यह संसार दुःखों से भरा हुआ है, कांटों से उलझा हुआ

है। यह विपत्ति रोग आदि से ग्रस्त है। कुटिल जनों से त्रस्त और भयानक बना हुआ है। दिन रात युद्ध की ज्वालाओं से यह लिपटा हुआ है। (अत एव सर्वथा) अशान्त है। हे भगवन् ! आप स्वयं ही हमारी रक्षा करें और समस्त तात, संताप को नष्ट करें।

८६. गतः सार्धो मासः श्वसिति जननी चाद्य भगवन्
शनैर्याति स्वास्थ्यं मम हृदि च मोदं वितनुते।
अधन्योऽहं रुग्णः शिथिलित-शरीरः समभवं
बलं तत्सेवायै वितर भगवन् मे खलु महत् ॥

हे भगवन् ! डेढ़ माह बीत गया है, मेरी पूज्या माता अभी जी रही रही है। धीरे धीरे वह अच्छे स्वास्थ्य को प्राप्त हो रही है और मेरे हृदय में निरन्तर आनन्द का संचार कर रही है। किन्तु हे ईश ! मैं स्वयं अब रोग ग्रस्त हो गया हूँ, (बार बार बहुत दूर से आने जाने के कारण) मेरा शरीर शिथिल हो गया है। कृपानिधान ! कृपा करके मुझे अत्यधिक शक्ति प्रदान करो जिससे मैं अपनी रोगग्रस्त मां की सेवा अधिक तत्परता से कर सकूं।

————

इति–गोवर्धन लाल तनेजा–तनयेन–सुभाष–वेदालङ्कारेण प्रणीतमीश–स्तोत्रं समाप्तम्।

प्रकाशित-प्रचारित-साहित्य

क्र.	पुस्तक	लेखक	मूल्य
१.	महाकविः कल्हणः	डा० सुभाष वेदालङ्कार	५०-००
२.	कल्हणस्य राजतरङ्गिण्यां चित्रिता भारतीय-संस्कृतिः	डा० सुभाष वेदालङ्कार	६०-००
३.	किरातार्जुनीयम्	प्रो० मदन शर्मा, डा० सुभाष वेदालङ्कार	५-००
४.	संस्कृत-निबन्ध-पारिजातः	डा० सुभाष वेदालङ्कार, डा० गौतम	२०-००
५.	ईशकाव्यम्	डा० सुभाष वेदालङ्कार	२-००
६.	महाराणा-प्रताप-चरितम्	डा० सुभाष वेदालङ्कार	२-००
७.	संस्कृत-सोपानम्	डा० सुभाष वेदालङ्कार	२-००
८.	हिन्दी-राजतरङ्गिणी	डा० सुभाष वेदालङ्कार	१२-००
९.	वेद-विचार-दर्पण	डा० सुभाष वेदालङ्कार	३-००
१०.	शुकनासोपदेशः	डा० सुभाष वेदालङ्कार, उमेश शास्त्री	५-००
११.	रघुवंशम्	डा० सुभाष वेदालङ्कार, मनीषा तनेजा	५-५०
१२.	काव्यदीपिका	डा० सुभाष वेदालङ्कार, मनीषा तनेजा	४-००
१३.	संस्कृत-दर्शन-दीपिका	डा० सुभाष वेदालङ्कार	१५-००
१४.	संस्कृत-गद्य-सौरभम्	डा० सुभाष वेदालङ्कार, मदनमोहन शर्मा	१०-००
१५.	संस्कृत-शिशु-गीतम्	डा० सुभाष वेदालङ्कार	२-००
१६.	लघुसिद्धान्तकौमुदी	डा हरिराम आचार्य, डा० सुभाष वेदालङ्कार	२-५०
१७.	ईशावास्योपनिषद्	डा० सुभाष वेदालङ्कार	२-५०
१८.	संस्कृत-सौरभम्	डा० सुभाष वेदालङ्कार	२-००
१९.	संस्कृति-सुधा (पद्यकाव्यम्)	डा० सुभाष वेदालङ्कार	२-००
२०	श्रीमद्भगवद्गीता	डा० भट्ट डा० सुभाष वेदालङ्कार	५-००
२१.	कठोपनिषद्	डा० सुभाष वेदालङ्कार	३-००
२२	शिशु-गीत	डा० सुभाष वेदालङ्कार	१-२५
२३.	ईश-स्तोत्रम्	डा० सुभाष वेदालङ्कार	३-२५
२४.	वैदिक-संस्कृति (प्रेस में)	डा० सुभाष वेदालङ्कार	२-००
२५.	कारिका	डा० रघुवीर वेदालङ्कार	४०-००
२६.	प्रायोग-संकुलम्	चेतन पाराशर	१२-००

अलङ्कार-प्रकाशन-जयपुर

७४, तनेजा ब्लाक, आदर्श नगर, जयपुर-३०२००४